सिविल रिवीजनल

न्यायमूर्ति , आर. एस. नरूला के समक्ष,

राम सरन दास-याचिकाकर्ता
बनाम
गुरुमुख राम और अन्य,-उत्तरदाता।
सिविल संशोधन सं 323 सन 1969
19 मई, 1969

पंजाब प्री-एम्पशन एक्ट (1913 का I)-धारा 22 (1) और 22 (4)-प्री-एम्पशन मनी जमा करने के लिए समय का विस्तार-कोर्ट-क्या पहले से स्वीकृत अवधि की समाप्ति के बाद इस तरह का विस्तार दिया जा सकता है-कोर्ट का विस्तार देने के लिए संतोष-कारण-क्या दिए जाने चाहिए- प्रतिवादी विस्तार के अनुदान का विरोध नहीं कर रहा है-क्या न्यायालय के लिए समय विस्तार देने के लिए पर्याप्त औचित्य है।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालय को पंजाब पूर्व-मुक्ति अधिनियम, 1913 की धारा 22 (1) के अधीन पूर्व-मुक्ति धन का पाँचवाँ भाग जमा करने के लिए समय बढ़ाने का अधिकार क्षेत्र है, भले ही उसके द्वारा पूर्व निर्धारित समय समाप्त हो गया हो।

(3) आपराधिक रिट सं. 444 , 1963 को 24 अगस्त, 1966 को तय किया गया।

अधिनियम की धारा 22 (4) में ऐसा कुछ भी नहीं है जो न्यायालय को समय-समय पर मूल रूप से निर्धारित अवधि को बढ़ाने के आदेश पारित करने से रोक सके और यह भी पहले से अनुमत समय की समाप्ति के बाद भी।

अभिनिर्धारित किया गया कि जहां कहीं भी अधिनियम की धारा 22 की उपधारा (4) के अधीन न्यायालय की अधिकारिता को समय के विस्तार के लिए पूर्व-निवारक द्वारा लागू किया जाता है, वहां यह संबंधित न्यायालय का कर्तव्य है कि वह मामले की परिस्थितियों पर गंभीरता से विचार करे, उन पर विचार करे और फिर ठोस कारणों से समर्थित अपना निर्णय दे, जिसके लिए पूर्ण औचित्य दिए गए मामले के अभिलेख पर उपलब्ध होने के बाद समय का विस्तार किया जाए। पूर्व-मुक्ति का अधिकार, हालांकि कानून द्वारा मान्यता प्राप्त है और हालांकि संवैधानिक रूप से मान्य है, फिर भी एक समुद्री डाकू अधिकार है। एक बार जब कोई निहित अधिकार किसी विक्रेता को अपने संविदात्मक संपत्ति अधिकारों का अतिक्रमण करने के इरादे से पूर्वनिर्धारण के दावे को विफल करने के लिए अर्जित हो जाता है, तो न्यायालय को विक्रेता को इस प्रकार अर्जित अधिकार से केवल इसलिए वंचित नहीं करना चाहिए क्योंकि विस्तार के लिए एक आवेदन किया गया है और न्यायालय के पास ऐसा आवेदन देने का अधिकार क्षेत्र है। केवल इसलिए कि प्रतिवादी गुण-दोष के आधार पर समय बढ़ाने के आवेदन का विरोध नहीं करता है, यह न्यायालय को समय विस्तार देने के लिए उचित नहीं ठहराता है। अधिक से अधिक यह उस स्थिति के समान स्थिति पैदा करता है जिसमें एक प्रतिवादी सेवा के बावजूद एक साधारण दीवानी मुकदमा नहीं लड़ता है और उसके खिलाफ एकतरफा कार्यवाही की जाती है। कभी भी न्यायालय वादी के पक्ष में केवल इसलिए डिक्री नहीं दे सकता है क्योंकि प्रतिवादी पेश नहीं हुआ है और वादी के दावे के बारे में गुण-दोष पर कुछ नहीं कहा है। ऐसी डिक्री, यदि पारित हो जाती है, तो उचित कार्यवाही में दरकिनार कर दी जानी चाहिए। यहां तक कि एक एकतरफा डिक्री भी एक साधारण मुकदमे में तब तक पारित नहीं की जा सकती जब तक कि अदालत वादी के दावे के साबित होने के बारे में उसके सामने पेश किए गए एकतरफा साक्ष्य से संतुष्ट न हो जाए। अधिनियम की धारा 22 की उपधारा (4) के अधीन समय विस्तार के लिए आवेदन उक्त नियम का अपवाद नहीं है।

(पैरा 3)

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन श्री वी. के. जैन, उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, सिरसा, दिनांक 11 अप्रैल, 1969 के आदेश के पुनरीक्षण के लिए याचिका।
याचिकाकर्ता के लिए जे. एन. कौशल, सीनियर अधिवक्ता व, ए शोक भान, अधिवक्ता।
उत्तरदाताओं की ओर से एस. एस. कांग, अधिवक्ता।

निर्णय

न्यायमूर्ति , नरूला, . -प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री जगन नाथ कौशल द्वारा निम्नलिखित परिस्थितियों में इस मामले में पूर्व-मुक्ति मुकदमों में दीवानी न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से संबंधित दो प्रश्न उठाए गए हैः -

(2) वादी-प्रत्यर्थियों, जिन्हें इसके बाद प्रेट-ए-टॉर्स कहा गया था, को निचली अदालत ने 25 फरवरी, 1969 को पूर्व-मुक्ति राशि का पांचवां हिस्सा जमा करने का निर्देश दिया था। 25 मार्च, 1969 को या उससे पहले 17,950 यह आदेश पंजाब पूर्वनियुक्ति अधिनियम (1913 का अधिनियम 1) कीधारा 22 (1) के तहत ट्रायल कोर्ट की अधिकारिता का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था, जिसे इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया है,

जो प्रावधान पढ़ता है-"22 (1) पूर्व-छूट के लिए प्रत्येक मुकदमे में अदालत, मुद्दों के निपटारे पर या उससे पहले किसी भी समय, वादी से अदालत में ऐसी राशि जमा करने की अपेक्षा करेगी, जो अदालत की राय में नहीं है। न्यायालय, भूमि या संपत्ति के संभावित मूल्य के पांचवें भाग से अधिक है, या वादी से न्यायालय की संतुष्टि के लिए प्रतिभूति देने की अपेक्षा करता है, यदि आवश्यक हो, तो उस समय के भीतर जो न्यायालय ऐसे आदेश में निर्धारित करे, उस संभावित मूल्य से अधिक राशि के भुगतान के लिए।

आदेश का पालन न करने पर, अभियुक्तों ने विचारण न्यायालय द्वारा मूल रूप से अनुमत समय की समाप्ति से पहले 22 मार्च, 1969 को एक याचिका दायर की, जिसमें मांग जमा करने के लिए समय बढ़ाने का अनुरोध किया गया। आवेदन की अनुमति दी गई और विचाराधीन राशि जमा करने का समय 8 अप्रैल, 1969 तक बढ़ा दिया गया। यह स्वीकार किया जाता है कि जमा विस्तारित अवधि के भीतर नहीं किया गया था। विस्तारित अवधि की समाप्ति के अगले दिन, यानी 9 अप्रैल, 1969 को, प्री-एम्प्टरों ने एक दिन के और विस्तार के लिए एक आवेदन दायर किया। दिनांक 11 अप्रैल, 1969 के आदेश द्वारा श्री वी. के. जैन, अधीनस्थ न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, सिरसा ने याचिकाकर्ता की इस आशय की आपत्ति को खारिज कर दिया कि अधिनियम की धारा 22 की उपधारा (4) न्यायालय को अपेक्षित जमा करने के लिए समय बढ़ाने की अधिकारिता प्रदान नहीं करती है, जो कि न्यायालय द्वारा उप-धारा (1) के तहत या धारा 22 की उप-धारा (4) के तहत निर्धारित समय की समाप्ति के बाद दायर किए गए समय के विस्तार के लिए आवेदन के आधार पर है। यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि 9 अप्रैल, 1969 के पूर्व-अभियुक्तों के आवेदन को समय द्वारा वर्जित नहीं किया गया था और ऐसे आवेदन पर भी निक्षेप के विस्तार की अनुमति दी जा सकती है, यदि न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि ऐसा विस्तार देने के लिए पर्याप्त आधार है, तो विद्वत अधीनस्थ न्यायाधीश ने कहा और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया -

"प्रतिवादियों के वकील ने आवेदन के गुण-दोष पर बहस नहीं की है। तदनुसार, मेरा विचार है कि इन परिस्थितियों में याचिकाकर्ताओं को अनुरोध के अनुसार 1/5 वीं पूर्व-छूट राशि के जमा में विस्तार दिया जाना चाहिए। तदनुसार वादी के आवेदन की अनुमति है।

यह विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश का उपरोक्त उद्धृत आदेश है जिसे इस याचिका में प्रतिवादी द्वारा प्रश्न में बुलाया गया है

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 निम्नलिखित दो आधारों पर-

(1) 9 अप्रैल, 1969 को पूर्व-अभियुक्तों के आवेदन की अनुमति देने में विचारण न्यायालय ने ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो विधि द्वारा उसमें निहित नहीं है क्योंकि अधिनियम की धारा 22 की उपधारा (4) के अधीन उस धारा की उपधारा (1) के अधीन अपेक्षित निक्षेप करने के लिए समय का विस्तार करने का आदेश केवल तभी उपयुक्त मामले में दिया जा सकता है जब ऐसे और विस्तार के लिए आवेदन संबंधित न्यायालय को उस प्रयोजन के लिए न्यायालय द्वारा पूर्व में अनुज्ञात समय की समाप्ति से पूर्व दिया जाता है न कि पूर्व निर्धारित समय की समाप्ति के पश्चात् किए गए आवेदन पर; और

(2) कि विचारण न्यायालय ने वर्तमान मामले में अवैध रूप से और धारा 22 (4) के अधीन अपने न्यायशास्त्र के अभ्यास में भौतिक अनियमितता के साथ कार्य किया था।इस आशय से कि न्यायालय का समाधान हो गया है कि वास्तव में, इस मामले के तथ्यों पर पूर्व-अभियुक्तों को और विस्तार देने के लिए पर्याप्त आधार था,

(3) सुनवाई के बाद सीखा गया।उन पक्षों के लिए सलाह 1. यह मानने में जरा भी हिचकिचाहट न करें कि श्री कौशल की दूसरी रचना में बहुत बड़ी ताकत है और उन्हें उस छोटी सी जमीन पर सफल होना चाहिए। यह देखने के बाद कि आवेदन की अनुमति केवल तभी दी जा सकती है जब न्यायालय संतुष्ट हो कि आगे विस्तार देने के लिए पर्याप्त आधार है, नीचे दिए गए न्यायालय ने केवल एक आधार का उल्लेख किया है जिस पर संभवतः यह तर्क दिया जा सकता है कि वह जमा करने के लिए समय बढ़ाने के कारणों की पर्याप्तता के बारे में संतुष्ट था।

उक्त एकमात्र आधार यह है कि "प्रतिवादियों के वकील ने आवेदन के गुण-दोष पर बहस नहीं की है।" यह विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा समय के विस्तार को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त माना गया था केवल यह कहना कि मामले के विस्तार की परिस्थितियों में दिया जाना चाहिए, समय के विस्तार के लिए कुछ वास्तविक अधिकार क्षेत्र होने के बारे में कोई निष्कर्ष दर्ज करने के बराबर नहीं है। पूर्व-मुक्ति मामले में अपेक्षित जमा करने के लिए अनुमत समय में विस्तार या आगे विस्तार की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जब भी अधिनियम की धारा 22 की उपधारा (4) के अधीन न्यायालय की अधिकारिता को समय के विस्तार के लिए पूर्व-निवारक द्वारा लागू किया जाता है, तो यह संबंधित न्यायालय का कर्तव्य है कि वह मामले की परिस्थितियों को गंभीरता से देखे, उन पर विचार करे और फिर ठोस कारणों से समर्थित अपना निर्णय दे, जिसके लिए दिए गए मामले के अभिलेख पर पूर्ण औचित्य उपलब्ध होने के बाद समय का विस्तार किया जाए। पूर्व-मुक्ति का अधिकार, हालांकि कानून द्वारा मान्यता प्राप्त है और हालांकि संवैधानिक रूप से मान्य है, कभी भी एक समुद्री डाकू अधिकार नहीं है। एक बार जब किसी विक्रेता को किसी संविदात्मक संपत्ति के अधिकारों का अतिक्रमण करने के उद्देश्य से पूर्व-मुक्ति के दावे को विफल करने का निहित अधिकार प्राप्त हो जाता है, तो अदालत को विक्रेता को इस प्रकार अर्जित अधिकार से केवल इसलिए वंचित नहीं करना चाहिए क्योंकि विस्तार के लिए एक आवेदन किया गया है।

और न्यायालय के पास इस तरह के आवेदन को मंजूरी देने का अधिकार क्षेत्र है। प्रतिवादियों ने आवेदन के गुणागुण पर तर्क नहीं दिया, सबसे अच्छा, उस स्थिति के समान स्थिति पैदा की जिसमें एक प्रतिवादी सेवा के बावजूद एक साधारण दीवानी मुकदमे का मुकाबला नहीं करता है और उसके खिलाफ कार्यवाही एकतरफा ली जाती है। फिर भी न्यायालय वादी के पक्ष में केवल इसलिए डिक्री नहीं दे सकता कि प्रतिवादी पेश नहीं हुआ है और वादी के दावे के बारे में गुण-दोष पर कुछ नहीं कहा है। ऐसी डिक्री, यदि पारित हो जाती है, तो उचित कार्यवाही में दरकिनार कर दी जानी चाहिए। यहाँ तक कि किसी भी साधारण वाद में एकतरफा डिक्री भी तब तक पारित नहीं की जा सकती जब तक कि अदालत वादी के दावे के साबित होने के बारे में उसके सामने पेश किए गए एकतरफा साक्ष्य से संतुष्ट न हो जाए। धारा 22 की उपधारा (4) के अधीन समय विस्तार के लिए आवेदन उक्त नियम का अपवाद नहीं है। जिस तरीके से इस मामले में अधिनियम की धारा 22 की उप-धारा (4) के तहत निचली अदालत द्वारा अधिकारिता का प्रयोग किया गया है, वह अवैध और पूरी तरह से अनियमित है।

(4) श्री कौश के ओंडी तर्क को बनाए रखने के बावजूद मुझे उनके पहले तर्क की वैधता के बारे में भी निर्णय लेना होगा, क्योंकि उस बिंदु पर मेरे निर्णय से भौतिक रूप से अलग राहत मिलेगी। यदि यह पाया जाता है कि निचली अदालत के पास 8 अप्रैल, 1969 के बाद प्रस्तुत आवेदन को मंजूर करने के लिए कोई न्यायशास्त्र नहीं था, तो पूर्व-अभियुक्तों के वाद के वाद को अधिनियम की धारा 22 की उपधारा (4) के तहत खारिज करना होगा और न्यायालय के पास इस मामले में कोई विकल्प नहीं होगा। हालाँकि, यदि आवेदन की स्थिरता के प्रश्न पर निचली अदालत के निष्कर्ष को बरकरार रखा जाता है, तो मामले को कानून के अनुसार फिर से निर्णय लेने के लिए निचली अदालत में वापस जाना होगा। इसलिए, मैं पहला बिंदु भी तय करने के लिए आगे बढ़ता हूं।

(5) इस अधिनियम की धारा 22 की उपधारा ग (1) में पहले से ही शब्दशः उद्धृत किया गया है। उप-धारा (2) और (3) हमारे उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक नहीं हैं।

> उप-धारा (4) में कहा गया है-"22 (4) यदि वादी न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर विफल हो जाता है जिसे न्यायालय अनुमति दे।उपधारा (1) और (2) में उल्लिखित प्रतिभूति को जमा करना या प्रस्तुत करना, उसकी शिकायत को अस्वीकार कर दिया जाएगा या उसकी अपील, जैसा भी मामला हो, खारिज कर दी जाएगी।
>
> धारा 22 की उपधारा (5) के खंड (ख) को भी इस स्तर पर उद्धृत किया जा सकता है, क्योंकि श्री कौशल द्वारा उस खंड की भाषा के आधार पर एक तर्क तैयार किया गया है-"(22)(5)(ख) यदि किसी कारण के लिए इस प्रकार दी गई कोई प्रतिभूति शून्य या अपर्याप्त हो जाती है, तो न्यायालय वादी को न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाने वाले समय के भीतर नई प्रतिभूति प्रस्तुत करने या प्रतिभूति बढ़ाने का आदेश देगा, यदि वादी ऐसे आदेश का पालन करने में विफल रहता है, तो वाद या अपील खारिज कर दी जाएगी।

अधिनियम की धारा 22 के उप-संशोधन (6) का उल्लेख करना अनावश्यक है।

(6) पंजाब पूर्व-मुक्ति अधिनियम, 1905, जिसे इसके पश्चात् 1905 अधिनियम कहा जाता है, अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (1) द्वारा निरसित किया गया था और अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। 1905 के अधिनियम की धारा 19 (3) अधिनियम की धारा 22 की उपधारा (4) के अनुरूप है। दोनों उपबंध समान थे सिवाय इसके कि अब धारा 22 (4) में अंतर्विष्ट "या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर जो न्यायालय अनुज्ञात करे" शब्द 1905 के अधिनियम की धारा 19 (3) में अंतर्विष्ट संगत उपबंध में नहीं थे। इसलिए, श्री कौशल तर्क देते हैं कि सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए, 1905 अधिनियम की धारा 19 (3) की भाषा अधिनियम की धारा 22 की उपधारा (5) के खंड (ख) में अब प्रयुक्त भाषा के समान थी क्योंकि पंजाब विधानमंडल द्वारा "या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर जो न्यायालय अनुज्ञा करे" शब्द धारा 22 (5) (ख) में प्रस्तुत नहीं किए गए हैं, हालांकि ऐसे शब्द अधिनियम की धारा 22 (4) में 1913 में

पूर्व-मुक्ति की विधि को पुनः अधिनियमित करते समय प्रस्तुत किए गए थे। यह पीछे की ओर है कि विद्वान वकील ने कुछ हद तक प्राचीन निर्णय का उल्लेख किया, जो मुझे लगता है कि लाला नर सिंह दास बनाम हकीम गुलाम नबी में जॉनस्टोन और रैटिगन, जे. जे. द्वारा दिए गए क्षेत्र में अभी भी है।[1]. उस मामले में निर्णय लेने के लिए डिवीजन बेंच से एकमात्र प्रश्न यह पूछा गया था कि क्या यह किसी न्यायालय के लिए खुला था, क्योंकि उसने एक बार 1905 के अधिनियम की धारा 19 (1) के तहत (अधिनियम की धारा 22 (1) के अनुरूप) उस समय को बाद के आदेश द्वारा बढ़ाने के लिए समय निर्धारित किया था। उस प्रश्न पर विचार करते समय, विद्वत न्यायाधीशों ने यह मत व्यक्त किया कि 1905 अधिनियम की धारा 19 (3) एक अर्थ में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1882 के अनुरूप की धारा 54 का पूरक थी।

1909 में। ~ ~ आदेश 7, नियम 11, संहिता, 1908 का) 1882 की संहिता की धारा 54 में उन परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है जिनमें वाद का वाद अस्वीकार किए जाने योग्य था। उस धारा के खंड (घ) में यह उपबंध किया गया है कि यदि न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर संशोधन के लिए लौटा दिया गया है, ऐसे समय के भीतर संशोधन नहीं किया गया है, वाद अस्वीकार किए जाने के लिए उत्तरदायी था। इसी प्रकार 1882 की संहिता की धारा 602 (1908 की संहिता के आदेश 43 नियम 5 और 6 के अनुरूप) के उपबंधों को निर्दिष्ट किया गया था, जिसमें प्रत्यर्थी की लागत की प्रतिभूति देने और संहिता में निर्धारित निश्चित समय के भीतर मुद्रण शुल्क आदि जमा करने के लिए प्रिवी काउंसल को अपील के योग्यता प्रमाण पत्र के लिए आवेदक की अपेक्षा की गई थी। तब यह पाया गया कि अधिनियम की धारा 19 सिविल प्रक्रिया संहिता में उपर्युक्त प्रावधानों के समान थी और उक्त धारा को 1905 के अधिनियम के उस अध्याय में स्थान मिला जो प्रक्रिया से संबंधित था। पंजाब के मुख्य न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 1905 के अधिनियम की धारा 19 (3) का सिविल प्रक्रिया संहिता (जिसका मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूँ) के समान उपबंधों पर न्यायालयों के विनिश्चयों के निर्देश के साथ किया जाना पूरी तरह से न्यायोचित था। इस प्रकार अभिनिर्धारित करते हुए विद्वान न्यायाधीशों ने कहा-"हमारे पास तदनुसार यह अभिनिर्धारित करने का सर्वोच्च अधिकार है कि इस प्रकार के प्रावधानों में, 'न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाने वाले समय के भीतर' या इसी तरह के शब्द, न्यायालय को समय-समय पर उसके द्वारा मूल रूप से निर्धारित अवधि को बढ़ाने के आदेश पारित करने से नहीं रोकते हैं, और यह भी न्यायालय द्वारा मूल रूप से निर्धारित समय की समाप्ति के बाद भी।

यह फिर से कहा गया-"हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि पंजाब पूर्व-मुक्ति अधिनियम की धारा 19 के खंड (3) में ऐसा कुछ भी नहीं है जो किसी न्यायालय को उसके द्वारा मूल रूप से निर्धारित अवधि को बढ़ाने से रोक सके और यह भी ऐसे मामले में जहां इस प्रकार निर्धारित अवधि अदालत द्वारा मूल रूप से निर्धारित समय की समाप्ति है।

(7) यह सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के संबंध में स्वयं विधानमंडल का दृष्टिकोण बताया गया था, जैसा कि 1908 की संहिता की धारा 148 के पठन से स्पष्ट है। यदि लाला नर सिंह दास (1) के मामले में निर्धारित कानून सही है, तो याचिकाकर्ता को अपनी पहली प्रस्तुति में विफल होना चाहिए। हालांकि, श्री कौशल ने तर्क दिया कि लाला नर सिंह दास (1) के मामले में फैसले के उपरोक्त भागों में डिवीजन बेंच के फैसले (जिसे मैंने (इस रिपोर्ट में तिरछे शब्दों में रेखांकित किया है) में टिप्पणियां केवल आज्ञाकारी थीं, क्योंकि बेंच से यह तय करने के लिए कहा गया था कि क्या यह अदालत के लिए आवश्यक जमा करने के लिए समय बढ़ाने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने के बाद समय बढ़ाने के लिए खुला था और यह सवाल कि क्या इस तरह के अधिकार क्षेत्र का विस्तार मूल रूप से निर्धारित समय की समाप्ति के बाद दायर आवेदनों को अनुमति देने के लिए किया गया था।

पंजाब के मुख्य न्यायालय के उनके प्रभुओं के सामने सीधे उपस्थित नहीं होता है।

(8) श्री कौशल ने तब सरदार जोरावर सिंह और अन्य बनाम जसबिर सिंह और अन्य मामले में लाहौर उच्च न्यायालय की खंड पीठ के फैसले का उल्लेख किया[2]. वह मामला अधिनियम की धारा 22 की उपधारा (5) के खंड (ख) के निर्माण और दायरे से संबंधित है। यह लाहौर उच्च न्यायालय (एडिसन और दीन मोहम्मद, जे. जे.) की खंड पीठ द्वारा आयोजित किया गया था।) कि विधायी आशय 'शब्दों से या ऐसे और समय के भीतर जो न्यायालय अनुज्ञात करे, स्पष्ट है, जिसे लाहौर उच्च न्यायालय के दो पूर्व निर्णयों की स्वीकृति पर जानबूझकर उपधारा (4) में अंतःस्थापित किया गया था, लेकिन धारा 22 की उपधारा (5) के खंड (ख) में दोहराया नहीं गया था। तब यह मत व्यक्त किया गया था-"यदि विधानमंडल न्यायालय को उपधारा (5) (ख) के अधीन अतिरिक्त समय देने का अधिकार देता तो वह इस शक्ति को स्पष्ट शब्दों में प्रदान करता जैसा कि उसने उपधारा में किया था। (4). चूक अनजाने में नहीं हो सकती क्योंकि विधायिका प्रश्न के महत्व को जानती थी। इसलिए हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि निम्न न्यायालय को धारा 22 की उपधारा (5) (ख) के अधीन उसके द्वारा एक बार नियत समय को बढ़ाने की कोई शक्ति नहीं थी।

लाला नर सिंह दास के मामले में निर्धारित कानून सरदार जोरावर सिंह और अन्य के मामले में अलग

---

1 78 P.R. 1909

2 A.I.R. 1938 Lah 606

प्रतीत नहीं होता है. यह केवल उप-धारा (4) में प्रश्नगत शब्दों के परिचय के कारण और धारा 22 (5) (ख) में उन शब्दों के परिचय को जानबूझकर छोड़ने के कारण चीजों के बदले हुए रंग में था कि धारा 22 (5) (ख) का अर्थ धारा 22 के संबंध में किया गया था।(4). मैं यह अभिनिर्धारित करने में असमर्थ हूँ कि लाहौर उच्च न्यायालय ने मामले के बारे में लाल नर सिंह दास (1) के मामले में पंजाब के मुख्य न्यायालय द्वारा पहले लिए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाया, जहां तक न्यायालय की अधिकारिता का संबंध है, अपेक्षित जमा करने के लिए मूल रूप से अनुमत समय की समाप्ति के बाद दायर आवेदन की अनुमति देने के लिए।

(9) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे प्रस्तुत किया कि मुझे संहिता की धारा 148 की निम्नलिखित भाषा के साथ धारा 22 की उप-धारा (4) के वाक्यांश विज्ञान की तुलना करनी चाहिए और यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि यदि विधायिका समय बढ़ाने या बढ़ाने के लिए न्यायालय को अधिकारिता देने का इरादा रखती है "भले ही मूल रूप से निर्धारित अवधि समाप्त हो गई हो", तो उसने उस भाषा को अपनाया होगा जैसा कि संहिता की धारा 148 के मामले में किया गया हैः —

148. जहां इस संहिता द्वारा विहित या अनुज्ञात किसी कार्य को करने के लिए न्यायालय द्वारा कोई अवधि नियत या अनुज्ञात की जाती है, वहां न्यायालय अपने विवेकाधिकार पर समय-समय पर ऐसी अवधि बढ़ा सकता है, भले ही मूल रूप से नियत या अनुज्ञात अवधि समाप्त हो गई हो।

श्री कौशल द्वारा प्रस्तुत एक अन्य तर्क यह है कि लाला नर सिंह दास (1) के मामले में पंजाब मुख्य न्यायालय द्वारा निर्धारित नियम को विधायी मान्यता देते हुए, जहां तक न्यायालय की पहले ही बढ़ाई गई अवधि को बढ़ाने की शक्ति का संबंध है, ऐसा प्रतीत होता है कि विधायिका ने जानबूझकर डिवीजन बेंच की टिप्पणियों को वही पवित्रता देने से इनकार कर दिया है, जिन्हें मैंने (इस रिपोर्ट में तिरछे शब्दों में) अपने फैसले से उद्धृत करते हुए रेखांकित किया है। मुझे इन दोनों में से किसी भी विवाद में कोई ताकत नहीं मिल रही है। यह आवश्यक नहीं है कि एक ही इरादे को व्यक्त करने के लिए अलग-अलग कानून बनाते समय अलग-अलग विधानसभाओं द्वारा एक ही भाषा का उपयोग किया जाना चाहिए। इसके विपरीत किसी भी संकेत के अभाव में, या तो स्वयं या अधिनियम के किसी अन्य भाग में, न्यायिक पूर्ववर्ती द्वारा अधिनियम की धारा 22 की उप-धारा (4) के तहत विधायिका द्वारा किसी न्यायालय को प्रदत्त अधिकार क्षेत्र पर एक सीमा को धारा में पढ़कर अधिरोपित करना उचित नहीं प्रतीत होता है, जो सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए; श्री कौशल चाहते हैं कि मैं उस प्रावधान में पढ़ूं-"बशर्ते कि ऐसा कोई विस्तार नहीं दिया जाएगा यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले समय बढ़ाने के लिए अपील नहीं की गई है जिसके भीतर अदालत के पूर्व आदेश द्वारा जमा करने की अनुमति दी गई थी।

(10) श्री कौशल ने अंत में एस. बी. कपूर, जे. (जैसा कि वह तब था) बहाई सिंह बनाम जहांगीर [3] में-"अधीनस्थ न्यायाधीश ने पहले ही विवेकाधिकार का प्रयोग किया है और यदि उसने मामले को अगले दिन, i.e., 17th (3) C.R तक स्थगित कर दिया था। नं. 1967 का 560 5 जनवरी, 1968 को तय किया गया।

मई, 1967, वह समय जिसके भीतर जमा किया जाना था, समाप्त हो गया होगा और अधीनस्थ न्यायाधीश के पास इसे आगे बढ़ाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा।

उपरोक्त टिप्पणियां केवल एक स्थगन देने से इनकार करने वाले आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने के अपने फैसले के समर्थन में एक तर्क के रूप में टीम न्यायाधीश द्वारा की गई थीं और ऐसा नहीं करते हैं। मेरी राय में, उस विषय पर कोई भी कानून निर्धारित करें जिससे हम संबंधित हैं।

(11) डिवीजन बेंच (मुख्य न्यायमूर्ति, मेहर सिंह, और न्यायमूर्ति, सौधी) दलीप सिंह और अन्य बनाम हरदेव सिंह और अन्य[4] में इस साधारण कारण के लिए कि यह धारा 22 की उपधारा (1) द्वारा निर्धारित समय विस्तार की बाहरी सीमा थी (अर्थात्, मुद्दे तैयार होने तक) जो खंड पीठ के समक्ष निर्णय के लिए थी। मुझसे पहले श्री कौशल ने जो सवाल उठाया था, वह वहां नहीं उठा। इसी प्रकार, कर्तार सिंह और दूसरे बनाम अजमेर सिंह और दूसरे[5] में पंडित, न्यायमूर्ति के निर्णय का किसी भी विस्तार में उल्लेख करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि यह धारा 22 की उपधारा (1) और (2) का दायरा था, जिस पर केवल उस मामले में विद्वान न्यायाधीश द्वारा विचार किया जाना था।

(12) पूरे मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करना। मेरी राय है कि जॉनस्टोन और रैटिगन की टिप्पणियाँ। न्यायाधीश ने लाला नर सिंह दास (1) के मामले में, जिसके पास न्यायालय द्वारा पूर्व निर्धारित समय की समाप्ति के बाद भी पूर्व-मुक्ति राशि के पांचवें हिस्से को जमा करने के लिए समय बढ़ाने का न्यायशास्त्र है, अभी भी सही है और वहां निर्धारित कानून सही है।

(13) पहले से अभिलिखित कारणों के लिए, मैं इस पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार करता हूं, श्री कौशल के दूसरे विवाद पर मेरे निष्कर्ष (पहले विवाद से निपटने से पहले मेरे द्वारा निपटाया गया) के कारण ट्रायल कोर्ट के आदेश को दरकिनार करता हूं और निर्देश देता हूं कि 9 अप्रैल, 1969 को दायर किए गए प्री-एम्प्टरों के आवेदन की सुनवाई अब ट्रायल कोर्ट द्वारा कानून के अनुसार योग्यता के आधार पर की

3 C.R. No. 560 of 1967 decided on 5th January, 1968.

4 I.L.R. (1970)1 Pb. & Hrya 58=1969 P.L.R. 6

5 **I.L.R. (1970)2 Pb. & Hay a. 335 = 1969 Cur,-. L.f. (Pb.) 353.**

जाएगी।

(14) याचिकाकर्ता का वकील, मुझे लगता है, श्री वी. के. जैन के न्यायालय से मामले के हस्तांतरण के लिए प्रार्थना में पूरी तरह से उचित है, ताकि (4) के साथ तथ्य के मुद्दे को फिर से तय करने के लिए उसे शर्मिंदा न किया जा सके। जिनसे उन्होंने एक बार निपटा है। इसलिए, मैं सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 24 के तहत निर्देश देता हूं कि जिस वाद में पुनरीक्षण के तहत आदेश पारित किया गया है, वह श्री प्रकाश चंद नरियाला, अधीनस्थ न्यायाधीश, द्वितीय श्रेणी, सिरसा के न्यायालय में स्थानांतरित हो जाएगा, जिनके पास वाद का विचारण करने की अधिकारिता है, यह देखते हुए कि अधिकारिता के प्रयोजनों के लिए वाद का मूल्य केवल रु 540 है।

(15) इस पुनरीक्षण याचिका की लागत 9 अप्रैल को पूर्व-बचावकर्ताओं के आवेदन पर निचली अदालत के निर्णय का पालन करेगी। 1969 में। पक्षों को 3 जून, 1969 को ट्रांसफ्री अदालत में पेश होने का निर्देश दिया गया है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

डा० सुशीला
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
(Trainee Judicial Officer)
रोहतक,हरियाणा